

एक अध्यापक के लिए वृद्धि एवं विकास का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। इसका मूल कारण यह है कि अध्यापक को भिन्न-भिन्न सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बालकों को शिक्षा देने का कार्य करना होता है, जो कि अलग-अलग आयुसमूहों से सम्बन्धित होते हैं। प्रत्येक आयु की अपनी विशेषताएँ होती हैं। अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह भिन्न आयुसमूहों की विशेषताओं, योग्यताओं, समस्याओं व क्षमताओं को ध्यान में रखकर अध्यापन कार्य करें। अध्यापक के ऊपर यह दायित्व होता है कि वह बालक में वांछनीय परिवर्तन लाये ताकि वह एक अच्छे नागरिक की जिम्मेदारी निभाकर राष्ट्रीय विकास में अपना योगदान कर सकें। इसके लिए बालक को ठीक प्रकार से शिक्षित किया जाना आवश्यक है। शिक्षा, वह चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक, वृद्धि और विकास के मार्ग में बालक का भली-भाँति पथ प्रदर्शन कर सकती है। शिक्षा द्वारा सब कुछ किये जाने के लिए अध्यापकों को वृद्धि व विकास के सभी पहलुओं से परिचित होना अति आवश्यक है। वृद्धि व विकास के ज्ञान के द्वारा ही अध्यापक छात्रों को आवश्यक निर्देशन व उपयुक्त शिक्षा देकर उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है। अतः अध्यापक को वृद्धि व विकास का ज्ञान होना आवश्यक है। बालक के विकास की प्रक्रिया जन्म से पूर्व, जब वह माता के गर्भ में आता है, तभी से आरम्भ हो जाती है और जन्म के बाद विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती हुई चलती रहती है।

‘वृद्धि’ व ‘विकास’ प्रायः ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची के रूप में काम में लाये जाते हैं क्योंकि ये दोनों प्रक्रिया एक-दूसरे से सम्बन्धित व निर्भर हैं। व्यक्ति के विकास में दोनों का अलग-अलग योगदान तय करना कठिन है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने इन दोनों प्रक्रियाओं में कुछ अन्तर बताया है।

अभिवृद्धि : अभिवृद्धि को शारीर वृद्धि के अर्थ में प्रयुक्त करते हुए मनोवैज्ञानिक फ्रैंक का कहना है- “शरीर व व्यवहार में से पहले जिसमें जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें अभिवृद्धि कहते हैं”।

सोरेन्सन के अनुसार, “सामान्य रूप से ‘अभिवृद्धि’ शब्द का प्रयोग शरीर व उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिए किया जाता है”।

विकास : विकास का अर्थ बालक के कद या भार में परिवर्तन होने से नहीं है, विकास में एक निश्चित क्रम होता है, जो बालक को शनैः शनैः परिपक्वता की ओर बढ़ाता है, इसमें प्रगति निहित होती है। अतः निश्चित परिवर्तनशील प्रगति को ही विकास माना जाता है।

श्रीमती हरलॉक के अनुसार, “विकास की सीमा अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है, अपितु प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में अनेक नवीन विशेषताएँ एवं योग्यताएँ प्रकट होती हैं”।

मुनरो का कथन है, “परिवर्तन, श्रृंखला की वह अवस्था, जिसमें बालक भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, विकास कहा जाता है”।

अतएव कहा जा सकता है कि विकास अवयवों की कार्यक्षमता की ओर संकेत करता है। विकास व्यक्ति की क्रियाओं में निरंतर होने वाले परिवर्तनों में दिखाई देता है। अतः ‘विकास शरीर के गुणात्मक परिवर्तनों का नाम है’ जिसके कारण व्यक्ति की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और व्यवहार में प्रगति या अवनति होती है।

अभिवृद्धि व विकास के मध्य व्याप्त अन्तर को हम निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं-

	वृद्धि (Growth)	विकास (Development)
1.	'वृद्धि' शब्द परिमाणात्मक परिवर्तनों (Quantitative Changes) के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए, बालक के बड़े होने के साथ-साथ आकार, लम्बाई, ऊँचाई व भार में होने वाला परिवर्तन वृद्धि कहलाता है।	'विकास' शब्द गुणात्मक परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिसके फलस्वरूप बालक की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता व व्यवहार में प्रगति होती है।
2.	'वृद्धि' शब्द सीमित अभिप्राय लिये हुए है। सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया में वृद्धि एक चरण है।	'विकास' शब्द अपने-आप में एक विस्तृत अर्थ रखता है, वृद्धि मात्र इसका एक भाग है। यह व्यक्ति में होने वाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता है।
3.	वृद्धि की प्रक्रिया जीवनपर्यन्त नहीं चलती। बालक द्वारा परिपक्वता ग्रहण करने के साथ-साथ यह समाप्त हो जाती है।	विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। वृद्धि की तरह बालक के परिपक्व होने पर यह समाप्त न होकर आजीवन चलती है।
4.	वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन सामान्यतः स्पष्ट दिखाई देते हैं। इन्हें भली-भांति मापा जा सकता है।	विकास के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को प्रत्यक्षतः मापना कठिन है। इन्हें केवल अप्रत्यक्ष तरीकों, जैसे व्यवहार के निरीक्षण आदि के द्वारा मापा जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अभिवृद्धि एवं विकास सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न हैं, किन्तु यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञात होता है कि विकास की अवधारणा में अभिवृद्धि की अवधारणा भी निहित है। मानव विकास के अध्ययन में हम वृद्धि को विकास से कदापि अलग नहीं कर सकते।

विकास के कारण: बालक के शारीरिक व मानसिक क्रियाओं के दो मुख्य कारण होते हैं, जो इस प्रकार हैं-

- परिपक्वता :** परिपक्वता का अर्थ है- व्यक्ति के आन्तरिक अंगों का प्रौढ़ होना तथा उन गुणों का विकास होना जो उसे वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं। बालक के विकास पर परिपक्वता की प्रक्रिया का प्रभाव जन्म से लेकर तब तक पड़ता है जब तक कि उसे मांसपेशीय एवं स्नायविक दृढ़ता और प्रौढ़ता पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो जाती। परिपक्वता आन्तरिक विकास की प्रक्रिया है, इसी के कारण बालक के शारीरिक अवयवों में नई क्रिया को सीखने की क्षमता उत्पन्न होती है।
- अधिगम :** वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते समय व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं में जो परिवर्तन होता है, उसे अधिगम या सीखना कहते हैं। परिपक्वता तथा अधिगम की क्रियाओं का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों का प्रभाव एक-दूसरे पर पड़ता है। विकास के अन्तर्गत दोनों महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परिपक्वता वंशानुक्रम से तथा अधिगम वातावरण से सम्बन्धित है।

विकास के सिद्धान्त

गैरीसन तथा अन्य के अनुसार:

जब बालक विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन दिखाई देते हैं। अध्ययनों के दौरान पाया गया है कि परिवर्तनों में पर्याप्त निश्चित सिद्धान्तों का अनुसरण करने की प्रवृत्ति होती है। इन्हें ही विकास के सिद्धान्त कहा जाता है। इन्हीं सिद्धान्तों के द्वारा विकास की प्रक्रिया नियंत्रित होती है, जो इस प्रकार हैं:

- विकास की दिशा का सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार, शिशु के शरीर में विकास सिर से पैर की ओर होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस विकास को मस्तिष्क-पशुमुखी (Cephalo Caudal Direction) कहा है। इसमें पहले शिशु का सिर, फिर धड़ व इसके पश्चात् हाथ-पैरों का विकास होता है।
- निरंतर विकास का सिद्धान्त:** स्किनर के अनुसार, "विकास प्रक्रियाओं की निरंतरता का सिद्धान्त केवल इस तथ्य पर बल देता है कि व्यक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है"। विभिन्न एक समान गति से नहीं होता, बल्कि अविवर्धन गति से निरंतर चलता रहता है। विकास की गति कभी तेज, कभी धीमी रहती है।
- विकास क्रम का सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार, विकास एक निश्चित व व्यवस्थित क्रम से होता है। बालक का गति सम्बन्धी व भाषा सम्बन्धी विकास एक क्रम में होता है। जैसे-तीसरे माह में गले से एक विशेष प्रकार की आवाज निकालना, छठे माह से खिलखिलाकर हँसना, सातवें माह में वह पा, बा, माँ व दा आदि शब्दों को बोलने का प्रयत्न करता है।
- विकास की गति में वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त:** वैज्ञानिक अध्ययन यह सिद्ध करते हैं कि विभिन्न व्यक्तियों के विकास की गति में विभिन्नता होती है। एक ही आयु के दो बालकों में शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में वैयक्तिक विभिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है।
- परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त:** बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक पक्ष के विकास में परस्पर सम्बन्ध होता है। शारीरिक विकास के साथ ही साथ उसकी रुचि, ध्यान व व्यवहार में भी परिवर्तन होता जाता है। शारीरिक विकास बौद्धिक विकास को प्रभावित करता है।
- समान प्रतिमान का सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार, मानव जाति के शिशुओं में विकास का प्रतिमान एक ही है, अर्थात् उनके विकास में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता। हालाँकि वे इस सिद्धान्त का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है-
"प्रत्येक जाति, चाहे वह पशु जाति हो या मानव जाति, अपनी जाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती है"।
- सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार, विकास के समस्त पक्षों में बालक पहले सामान्य प्रतिक्रिया करता है, बाद में विशिष्ट प्रतिक्रिया करता है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए सामान्य रूप से केवल हाथ ही नहीं, बल्कि अन्य अंगों को भी हिलाता है, किन्तु धीरे-धीरे उसे प्राप्त करने के लिए विशिष्ट रूप से हाथ बढ़ाता है।
- वंशानुक्रम व वातावरण के मध्य अन्तःक्रिया का सिद्धान्त:** बालक का विकास वंशानुक्रम व वातावरण की अन्तःक्रिया (Interaction) के कारण होता है। इसके आगे शिशु विकास नहीं कर सकता।

विकास के आधार



विकास के दो आधार हैं-

1. वंशानुक्रम

वंशानुक्रम: डगलस व हालैण्ड के अनुसार, "एक व्यक्ति के वंशानुक्रम में वे सभी शारीरिक बनावटें, शारीरिक विशेषताएँ, क्रियाएँ या क्षमताएँ सम्मिलित रहती हैं, जिनको वह अपने माता-पिता, अन्य पूर्वजों या प्रजाति से प्राप्त करता है।"

2. वातावरण

बालक को न केवल अपने माता-पिता से, बल्कि अन्य पूर्वजों से भी अनेक शारीरिक व मानसिक गुण प्राप्त होते हैं। इसी को वंश-परम्परा, आनुवंशिकता, पैतृकता व वंशानुक्रम आदि नाम दिये गये हैं। वंशानुक्रम का प्रभाव शरीर व मन दोनों पर दिखाई देता है। विभिन्न प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि विकास की क्रिया में वंशानुक्रम महत्वपूर्ण आधार है।

वंशानुक्रम (Heredit): ऐसा देखा गया है कि देह या शरीर में जो भी रचना सम्बन्धी दोष या विकार हो उनका हस्तान्तरण माँ-बाप द्वारा उनके बालकों में नहीं होता बल्कि माँ-बाप की अपंग माँ-बाप की संतान का जन्म से अपंग होना आवश्यक नहीं। अंधे माँ-बाप की संतान अच्छी दृष्टि वाली हो सकती है। कुरूप माँ की बेटी सुन्दर हो सकती है। यह बात भी समझी जा सकती है कि माँ-बाप द्वारा अर्जित की गई कुशलताओं, ज्ञान, रुचि, अभिवृत्ति आदि का भी वंशक्रम प्रक्रिया द्वारा बालकों में हस्तान्तरण नहीं होता। अध्यापकों व माता-पिता को यह समझने की भूल नहीं करनी चाहिए कि एक संगीतकार का बेटा स्वतः संगीतकार या कुशल बट्टे या वर्णनकार का बेटा जन्म से ही इन कुशलताओं को लेकर पैदा होगा, हाँ, यह हो सकता है कि बालक द्वारा इन कुशलताओं को विकास से सम्बन्धित आवश्यक योग्यताओं व क्षमताओं को वंशक्रम धरोहर के रूप में ग्रहण कर लिया जाये तथा उन्हें बेहतर प्रशिक्षण व वातावरण द्वारा आवश्यक ऊँचाइयों पर पहुँचाने के प्रयत्न किये जायें।

वातावरण : वातावरण के लिये 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है, जो व्यक्ति के जीवन और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

बुडवर्थ के अनुसार, “वातावरण में वे सभी बाहरी तत्त्व आ जाते हैं, जिन्होंने व्यक्ति को जीवन आरम्भ करने के समय से प्रभावित किया है”।

एनास्टसी के अनुसार, “वातावरण वह हर वस्तु है, जो व्यक्ति के जीन्स के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करती है।”

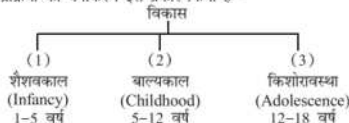
मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण के महत्त्व के संदर्भ में भी अध्ययन व परीक्षण करके यह सिद्ध कर दिया कि बालक के विकास के प्रत्येक पहलू पर भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वातावरण या पर्यावरण में वे सभी बाहरी तत्त्व या शक्तियाँ निहित हैं जो माँ के द्वारा गर्भाधान के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति-विशेष की वृद्धि और विकास को प्रभावित करते रहते हैं। जन्म से पहले माँ का गर्भाशय इन शक्तियों का कार्यक्षेत्र होता है, माँ जो कुछ भी खाती है, करती, सोचती और अनुभव करती है, उस सभी का प्रभाव गर्भ में पल रहे शिशु पर पड़ता है। जन्म के बाद तो चारों ओर से वातावरण सम्बन्धी शक्तियाँ उसको प्रभावित करने लगती हैं। उन शक्तियों को भौतिक और सामाजिक या सांस्कृतिक दो विभिन्न प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है। भोजन, जल, जलवायु, घर, विद्यालय, ग्राम या शहर का वातावरण और भौतिक सुविधायें— ये सभी वातावरण सम्बन्धी भौतिक शक्तियाँ कहलाती हैं, जबकि माँ-बाप परिवार के सदस्य, पड़ोसी, मित्र और सहपाठी, अध्यापक वर्ग, समुदाय तथा समाज के अन्य सदस्य, संचार, यातायात और मनोरंजन के साधन, धार्मिक स्थान, क्लब, पुस्तकालय तथा वाचनालय इत्यादि सामाजिक व सांस्कृतिक शक्तियों में सम्मिलित करते हैं। ये सभी वातावरण सम्बन्धी शक्तियाँ व्यक्ति की वृद्धि व विकास के सभी पहलुओं जैसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक आदि पर पूरा प्रभाव डालती हैं। माँ के गर्भ में अपनी जीवनलीला प्रारंभ करने से लेकर अपनी अंतिम सांस तक व्यक्ति इन शक्तियों से प्रभावित होता रहता है।

विकास की अवस्थाएँ

विकास की अवस्थाओं को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वानों द्वारा प्रदत्त वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

1. सैले ने विकास प्रक्रिया का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—



2. कॉलसेनिक (Kolsenic) ने विकास प्रक्रिया का वर्गीकरण इन चरणों में किया है-

अवस्था	समय
1. गर्भाधान से जन्म तक	पूर्व जन्मकाल (Pre-natal)
2. शैशव	जन्म से 3 या 4 सप्ताह तक
3. आरम्भिक शैशव	1 या 2 मास से 15 मास तक
4. उत्तर शैशव	15 मास से 30 मास तक
5. पूर्व बाल्यकाल	2½ वर्ष से 5 वर्ष तक
6. मध्य बाल्यकाल	5 वर्ष से 9 वर्ष तक
7. उत्तर बाल्यकाल	9 से 12 वर्ष
8. किशोरावस्था	12 से 21 वर्ष

3. अध्ययन की दृष्टि से विकास प्रक्रिया को इस प्रकार भी विभाजित किया गया है-

- (A) शैशव काल (Infancy) जन्म से 5 वर्ष तक।
 (B) बाल्यावस्था (Childhood) 6 से 12 वर्ष तक
 (C) किशोरावस्था (Adolescence) 12 से 19 वर्ष तक

4. सामान्यतया मनोवैज्ञानिक मानव विकास को निम्न चार अवस्थाओं में विभाजित करते हैं-

1. शैशवावस्था : जन्म से 6 वर्ष
 2. बाल्यावस्था : 6 से 12 वर्ष तक
 3. किशोरावस्था : 12 से 18 वर्ष
 4. प्रौढ़ावस्था : 18 के बाद

वृद्धि या विकास के विभिन्न आयाम या पक्ष :

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति के विकास के निम्नलिखित पक्ष माने जाते हैं-

1. शारीरिक विकास
2. मानसिक विकास
3. सामाजिक विकास
4. संवेगात्मक विकास
5. नैतिक या चारित्रिक विकास

विकास के इन सभी आयामों का शिक्षा की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है क्योंकि विकास की प्रक्रिया से इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अगर हम प्रत्येक अवस्था में विकास के इन पक्षों पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि किसी भी अवस्था में किस पक्ष का विकास, कितनी मात्रा में, किस प्रकार व किस दिशा से होता है।

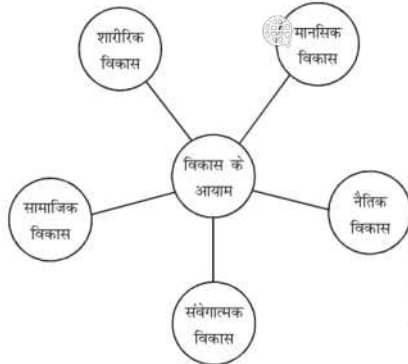
शारीरिक विकास : शारीरिक वृद्धि व विकास से अभिप्राय हमारे शारीरिक ढाँचे और आन्तरिक व बाहरी अवयवों में जन्म से मृत्यु तक निरंतर होने वाले परिवर्तनों से है।

सामान्य शारीरिक विकास में निम्न परिवर्तन आते हैं-

1. **बाहरी ढाँचे में परिवर्तन :** ऊँचाई, शारीरिक अनुपात, भार आदि में होने वाला परिवर्तन।
2. **आन्तरिक अंगों में होने वाला परिवर्तन :** स्नायु संस्थान, श्वसन संस्थान, पाचन संस्थान, रक्त तथा उत्सर्जन संस्थान आदि की कार्य प्रणाली व क्षमता से सम्बन्धित सभी प्रकार के परिवर्तन।

मानसिक विकास : बालक की मानसिक योग्यताओं व क्षमताओं में होने वाले परिवर्तन अर्थात् वृद्धि को मानसिक विकास कहते हैं।

बालक की संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, स्मरणशक्ति, बुद्धि, विचार, शक्ति निरीक्षण, परीक्षण, सामान्यीकरण शक्ति, बुद्धि व समस्या समाधान आदि प्रकार की मानसिक व बौद्धिक शक्तियाँ हमारी मानसिक बुद्धि व विकास को प्रक्रिया द्वारा ही नियंत्रित होती हैं।



सामाजिक विकास : "सामाजिक विकास से अभिप्राय सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करने से है"।

श्रीमती हरलॉक के अनुसार, सामाजिक विकास का लक्ष्य बच्चे में सामाजिक परिपक्वता लाना है। बालक परिवार से सामाजिकता सीखता है। सर्वप्रथम वह परिवार, पास-पड़ोस व तत्पश्चात् वह विद्यालय व बाहरी दुनिया के सम्पर्क में आता है। वह सहानुभूति, सहयोग, सद्भावना, परोपकार व त्याग आदि को सीखता है। एक शिशु के रूप में वह स्वार्थी होता है, दूसरों के हित को परवाह नहीं करता, परन्तु धीरे-धीरे जैसे ही सामाजिक विकास पूर्ण होता है, वह आदर्शों की दुनिया में विचरण करने वाला, समाज सुधारक के रूप में उभरता है।

संवेगात्मक विकास : 'संवेग' पद का अंग्रेजी रूपांतर Emotion है। यह लैटिन शब्द Emovere से बना है जिसका अर्थ उत्तेजित करना होता है। इस शाब्दिक अर्थ को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को उत्तेजित स्थिति का नाम संवेग है।

कैण्टोविस के अनुसार, "संवेग से तात्पर्य एक ऐसी आत्मनिष्ठ (Subjective) भाव की अवस्था से होता है जिससे कुछ शारीरिक उत्तेजना पैदा होती है और फिर उसमें खास-खास व्यवहार होता है।" संवेग एक ऐसी जटिल अवस्था है जिसमें कुछ आंगिक प्रतिक्रियाएँ, जैसे हृदय की गति में परिवर्तन, रक्तचाप में परिवर्तन, सांस की गति में परिवर्तन, विभिन्न अंतःस्त्रावी ग्रन्थियों के कार्यों में परिवर्तन आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के बाहरी अंगों, जैसे हाथ, पैर, आँख, चेहरा आदि में भी कुछ परिवर्तन हो जाते हैं जिसे देखकर यह समझा जा सकता है कि बालक संवेग की स्थिति में है। संवेग में आंगिक प्रतिक्रियाएँ, अभिव्यंजक व्यवहार के अलावा एक आत्मनिष्ठ भाव भी होता है। सामान्यतः किसी भी संवेग में सुखद या दुःखद भाव पाये जाते हैं।

संवेगात्मक विकास से अभिप्राय इस बात से है कि बालकों में विभिन्न प्रकार के संवेग का विकास कैसे होता है, बालकों पर किस प्रकार संवेगों का प्रभाव पड़ता है। जहाँ बाल्यावस्था में बालकों में डर, क्रोध, जलन, हर्ष, दुःख, अनुरा प्रमुखता से पाये जाते हैं, वहीं किशोरावस्था में भी ये संवेग अधिक पाये जाते हैं, परन्तु अंतर मात्र इतना ही होता है कि बाल्यावस्था में ये नियंत्रित नहीं होते, जबकि किशोरावस्था में संवेगिक नियंत्रण अधिक होता है।

संवेगिक विकास का महत्व शिक्षकों के लिए अधिक है। इस जानकारी से शिक्षकों को स्कूल के संवेगिक वातावरण को संतुलित बनाए रखने में काफी मदद मिलती है। वे बालकों में अनुगम, हर्ष आदि जैसे संवेग उत्पन्न कर उनकी शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ावा देने में समर्थ होते हैं ताकि छात्रों के व्यक्तिगत विकास हो।

शारीरिक विकास :




भ्रूणावस्था में इसकी लम्बाई 20 इंच व भार 6 से 7 पौंड तक हो जाता है, त्वचा, अंग आदि बन जाते हैं। बच्चे की धड़कन आसानी से सुनी जा सकती है।

2. शैशवावस्था :

- (A) वजन : • जन्म के समय 6-8 पौंड
• बालिकाओं का अपेक्षाकृत कम
• पांचवें वर्ष के अन्त तक 38-40 पौंड
- (B) लम्बाई : • जन्म के समय लगभग 90 इंच।
• बालिकाओं की अपेक्षाकृत कम, परन्तु 3-4 वर्ष उपरान्त बालिकायें लड़कों से अधिक लम्बाई लेती हैं।
- (C) हड्डियाँ : • जन्म के समय हड्डियाँ मुलायम तथा लचीली
• कुल संख्या 270
• बालकों में अपेक्षाकृत तीव्र विकास
- (D) सिर व मस्तिष्क : • बच्चे का सिर जन्म के समय, शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई का 1/4 भाग होता है।
• मस्तिष्क का भार 350 ग्राम
- (E) अन्य परिवर्तन : • 5वें या छठे माह में नीचे के दाँत निकलना शुरू
• 4 वर्ष तक सभी अस्थायी दाँत निकलना
• शिशु की धड़कन, जो प्रारम्भ में 140 प्रति मिनट होती है, अब 100 रह जाती है।
• यौनांगों का मंद विकास

3. बाल्यावस्था :

- (A) वजन : इस अवस्था में बालक व बालिकाओं के भार में व्यापक अन्तर होता है। 9-10 वर्ष के आयु तक बालक भार में अधिक रहते हैं, जबकि इसके पर्याप्त बालिकायें शारीरिक भार में अधिक होती जाती हैं। बाल्यावस्था में लड़कियाँ औसतन 29.5 कि. ग्राम व लड़के 28.5 कि. ग्राम रहते हैं।
- (B) लम्बाई : प्रारम्भ के वर्षों में लड़के अधिक लम्बे होते हैं, परन्तु 10-11 वर्ष की अवस्था में लड़कियाँ लड़कों की तुलना में बराबर या थोड़ा अधिक लम्बी रहती हैं। लड़कियाँ 128 सेमी. के लगभग व लड़के 125 सेमी. के करीब होते हैं।
- (C) हड्डियाँ एवं दाँत :
• हड्डियाँ में मजबूती व दृढ़ता आना
• हड्डियों की संख्या 350 तक बढ़ना

- दाँतों में स्थायित्व आना
 - दाँतों की संख्या 32 होना
 - बालकों की तुलना में बालिकाओं के दाँतों का स्थायीकरण शीघ्र होना
- (D) सिर व मस्तिष्क :
- सिर व मस्तिष्क में परिवर्तन होना। 
 - बालक के मस्तिष्क का भार शरीर के कुल भार का 90 प्रतिशत होना।
- (E) अन्य परिवर्तन :
- बालक की मांसपेशियों का मन्द विकास होना।
 - हृदय की धड़कन में कमी होना।
 - एक मिनट में लगभग 85 बार धड़कना
 - बालक व बालिकाओं की शारीरिक बनावट में अन्तर स्पष्ट होना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - 11वें व 12वें वर्ष में यौनांगों का तीव्र विकास होना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
4. किशोरावस्था में शारीरिक विकास :
- (A) वजन :
- किशोरावस्था में बालक व बालिकाओं के भार में तेजी से वृद्धि होती है। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - 18 वर्ष के अन्त तक लड़कों का भार लड़कियों की तुलना में अधिक होता है। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- (B) लम्बाई :
- लड़कियाँ अपनी लम्बाई 16 वर्ष तक पूर्ण कर चुकी होती हैं।
 - लड़के 18 वर्ष तक पूर्ण करते हैं।
- (C) दाँत :
- दाँतों का पूर्ण स्थायीकरण।
 - लड़के व लड़कियों में अक्सर दाँत निकलने लगते हैं।
- (D) सिर व मस्तिष्क :
- सिर व मस्तिष्क का विकास निरन्तर जारी रहता है।
 - सिर का पूर्ण विकास 15 से 17 वर्ष के मध्य होता है।
 - मस्तिष्क का भार लगभग 1200 से लेकर 1400 ग्राम के बीच होता है।
- (E) अन्य परिवर्तन :
- हृदय की धड़कन में पूर्ण कमी आना। प्रारम्भ में प्रति एक मिनट में 72 बार धड़कना।
 - लड़कों एवं लड़कियों में पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की पूर्ण विशेषताएँ क्रमशः प्रकट होने लगती हैं।
 - एक मिनट में लगभग 85 बार धड़कना।
 - बालक व बालिकाओं की शारीरिक बनावट में अन्तर स्पष्ट होना।

मानसिक विकास

बालक के मानसिक या बौद्धिक विकास के अन्तर्गत उसकी समस्त मानसिक योग्यताएँ और शक्तियाँ सम्मिलित होती हैं। इन योग्यताओं या शक्तियों का विकास बच्चे में धीरे-धीरे होता है-

- (A) संवेदना व प्रत्यक्षीकरण : आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हमें जो अनुभूति होती है, उसे संवेदना कहते हैं। जब संवेदना से कोई निश्चित अर्थ निकालने की चेष्टा की जाती है तो वे प्रत्यक्षीकरण का रूप धारण कर लेती हैं।

- (B) **संप्रत्यय निर्माण** : संप्रत्यय एक प्रकार से ऐसा सामान्यीकृत विचार है जो एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न प्रत्यक्ष अनुभवों के माध्यम से आगमनात्मक तर्क प्रणाली का प्रयोग करते हुए विभिन्न व्यक्तियों या प्रक्रियाओं के बारे में बना लिये जाते हैं। संप्रत्यय निर्माण में द्विभेदीकरण और सामान्यीकरण से सम्बन्धित दोनों प्रकार की योग्यताओं का उपयोग होता है।
- (C) **स्मरणशक्ति का विकास** : यह मानसिक विकास का महत्वपूर्ण पहलू है। परिपक्वता और अनुभवों के माध्यम से इसका धीरे-धीरे विकास होने लगता है।
- (D) **समस्या समाधान योग्यता का विकास** : यह मानसिक विकास का महत्वपूर्ण पहलू है। व्यक्ति के समक्ष अनेक समस्याएँ आती हैं। चिन्तन व तर्क के माध्यम से समस्या समाधान की योग्यता विकसित होती है।
1. **शैशवावस्था में मानसिक विकास** : शैशवावस्था में बालक की मानसिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से अविकसित होती हैं। आयु में वृद्धि व विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता में भी वृद्धि होती जाती है। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- सोरेन्सन के अनुसार**, जैसे-जैसे शिशु प्रतिदिन, प्रतिमास तथा प्रतिवर्ष बढ़ता है, वैसे-वैसे उसकी मानसिक शक्तियाँ भी बढ़ती हैं। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- (A) **संवेदना व प्रत्यक्षीकरण योग्यता** : ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- संवेदना व प्रत्यक्षीकरण में अत्यधिक पिछड़ापन। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - ज्ञानेन्द्रियों विकसित न होना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - 2-3 वर्ष में परिचित-अपरिचित में भेद करना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - अवस्था के अन्त तक वातावरण से परिचित होना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - वस्तुओं में निहित अर्थ को ग्रहण करने का प्रयास करना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- (B) **संप्रत्यय निर्माण** :
- शैशवावस्था को प्रारम्भ में यह योग्यता विकसित नहीं होती। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - धीरे-धीरे विभेद करने की योग्यता का विकसित होना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- (C) **स्मरणशक्ति** :
- जन्म के समय विद्यमान स्मरणशक्ति की मात्रा का अनुमान नहीं। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - प्रारम्भ में बालकों की स्मरणशक्ति एक तोते की तरह होती है। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - छः वर्षों में पूर्व में सुनी कहानी या पूर्व अनुभवों को सुनाने में समर्थ। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
- (D) **समस्या समाधान** :
- चिन्तन व तर्क करने की योग्यता 2½ से 3 वर्ष की अवस्था से विकसित होने लगती है। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - विचार शक्ति अधिक सूक्ष्म नहीं होती। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - स्थूल चिन्तन करने में समर्थ। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
2. **बाल्यावस्था में मानसिक विकास** : बाल्यावस्था में मानसिक विकास तेज गति से होता है। बालक में रुचि, चिन्तन, स्मरण, निर्णय व समस्या समाधान आदि गुणों का स्वतः ही विकास होता है।
- क्रो एण्ड क्रो** के अनुसार, "जब बालक लगभग 6 वर्ष का हो जाता है, तब उसकी मानसिक शक्तियों और योग्यताओं का पूर्ण विकास हो जाता है।"
- (A) **संवेदना व प्रत्यक्षीकरण** :
- ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग प्रारम्भ व जिज्ञासा का बढ़ना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - प्रारम्भ में समय, स्थान, आकार, गति व दूरी से सम्बन्धित प्रत्यक्षीकरण विकसित ना होना। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐
 - अन्त के वर्षों में प्रत्यक्षीकरण योग्यता विकसित होती है। ☐ ☐ ☐ ☐ ☐ ☐

(B) संप्रत्यय निर्माण :

- स्थूल तथा प्रत्यक्ष अनुभवों के द्वारा भी संप्रत्ययों का निर्माण करना प्रारम्भ होता है।
- चित्र या फोटोग्राफ देखकर निश्चित धारणा का निर्माण करना।
- नये-नये संप्रत्ययों का निर्माण, पुराने सम्प्रत्ययों को भी नवीन रूप देना।

(C) स्मरणशक्ति :

- रटने व ग्रहणशक्ति में तीव्र वृद्धि।
- छोटी-छोटी पंक्तियों को दोहराना व कहानी सुनाना सीख जाता है।
- देखी हुई फिल्म या कहानी का 3/4 भाग तक सुनाने में सफल होता।

(D) समस्या समाधान :

- मूर्त चिन्तन करने योग्य।
- दिन, तारीख, वर्ष व सिककों का ज्ञान व ऐसी समस्याओं का समाधान।
- दैनिक प्रयोग में समस्याओं का समाधान प्रारम्भ।

3. किशोरावस्था में मानसिक विकास : किशोरावस्था में मानसिक विकास इस प्रकार है—

(A) संवेदना व प्रत्यक्षीकरण :

- ज्ञानेन्द्रियों की कार्यकुशलता अपने शिखर पर।
- प्रत्यक्षीकरण मुख्यवस्थित व विवेकपूर्ण।
- प्रत्यक्षीकरण के अनुभव, निश्चित, अर्थपूर्ण व विस्तृत।
- संवेदना व प्रत्यक्षीकरणों को स्थूल वस्तुओं से सम्बन्धित करने की आवश्यकता नहीं।

(B) संप्रत्यय निर्माण :

- परिपक्वता ग्रहण करने के साथ ही साथ संप्रत्यय अधिक-से-अधिक स्पष्ट, विशिष्ट व निश्चित होते चले जाते हैं।
- संप्रत्यय विकसित होने की प्रक्रिया में स्थूल से सूक्ष्म, अस्पष्टता से स्पष्टता और अनिश्चित से निश्चित की ओर गमन।
- स्थिति, दूर, गहराई आदि से सम्बन्धित प्रत्यय स्पष्ट व विकसित अवस्था में।

(C) स्मरणशक्ति :

- स्मरणशक्ति तर्क एवं सूझ-बूझ पर निर्भर।
- तर्क पर आधारित प्रत्ययों की स्मृति अधिक समय तक बनी रहती है।

(D) समस्या समाधान :

- अमूर्त चिन्तन करने की क्षमता विकसित होना।
- तर्क करने की योग्यता का पूर्ण विकास।
- जटिल समस्याओं का समाधान, तर्क, चिन्तन व अनुभवों के आधार पर करने योग्य होना।

(E) अन्य मानसिक योग्यताएँ :

किशोरावस्था में मानसिक विकास पूर्ण होता है—

- बुद्धि का पूर्ण विकास।
- स्मृति-विस्मृति, कल्पना, चिन्तन, तर्क, समस्या समाधान आदि का पूर्ण विकास।
- कल्पना-शक्ति का बाहुल्य।
- विभिन्न रुचियों का तीव्रता से विकास।

सामाजिक विकास

बालक का व्यक्तित्व सामाजिक पर्यावरण में विकसित होता है। वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त योग्यताएँ, समाज द्वारा ही सही दिशा में निर्देशित की जाती हैं।

एलेक्जेंडर के अनुसार, व्यक्तित्व का निर्माण शून्य में नहीं होता, सामाजिक घटनाओं तथा प्रक्रियाएँ बालक को मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यक्तित्व के प्रतिमानों को अनवरत रूप से प्रभावित करती रही हैं।

1. शैशवावस्था में सामाजिक विकास :

जन्म के समय से शिशु आत्मकेन्द्रित होता है। सामाजिक परिवेश में आने के साथ ही आत्म-केन्द्रित व्यवहार, समाप्त होता जाता है। **क्रो एवं क्रो** कहते हैं-

“जन्म के समय शिशु न तो सामाजिक प्राणी होता है न असामाजिक, पर वह इस स्थिति में अधिक समय तक नहीं रहता।”

श्रीमती हरलॉक ने शिशु के सामाजिक विकास को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

आयु माह	सामाजिक व्यवहार का रूप
प्रथम माह	ध्वनियों में अन्तर समझना
द्वितीय माह	मानव ध्वनि पहचानना, मुस्कुराना
तृतीय माह से चतुर्थ माह	माता के लिये प्रसन्नता व माता के अभाव में दुःख
पंचम माह	पारिवारिक सदस्यों को पहचानना।
अष्टम व नवम् माह	परिचितों से प्यार, अन्य लोगों से भय
दशम् एवं एकादश माह	अनुकरण द्वारा हाव-भाव सीखना, संकेतों का प्रदर्शन
दूसरे वर्ष की अवधि	बड़े लोगों को उनके कार्यों में सहायता, सहयोग, सहानुभूति का प्रकाशन

2. बाल्यावस्था में सामाजिक विकास :

शिशु का संसार उसका परिवार होता है, जबकि बालक का संसार परिवार के बाहर बालकों का समूह व विद्यालय होता है।

(A) सामाजिक भावना :

- इस अवस्था में सामाजिक जागरूकता, चेतना एवं समाज के प्रति रुझान।
- सामाजिक क्षेत्र व्यापक व विकसित होना।
- विद्यालयीय पर्यावरण से अनुकूलन करना।
- नये मित्र बनाना।

(B) आत्मनिर्भरता :

- स्वयं को स्वतंत्र मानकर आत्मनिर्भर बनने की कोशिश करना।
- बालकों के साथ रहना, निर्णय लेना सीखना।

(C) गिरोह प्रवृत्ति :

- यह अवस्था (Gang age) समूह आयु कहलाती है।
- खेल समूह, सेवा समूह, सांस्कृतिक समूहों का बनना।
- अपने समूह के नियमों व मान्यताओं को मानना।

(D) नागरिक गुणों का विकास :

- आदतों व नागरिक गुणों का विकास।
- बालक धनी, सुखी, विद्वान व नेता बनना चाहता है।

(E) भावना ग्रन्थि का विकास :

- लड़कों में ऑडिपस और लड़कियों में 'एलक्टा' भावना ग्रन्थि का विकास।
- 'ऑडिपस ग्रन्थि' के कारण पुत्र, माता से प्रेम करता है।
- 'एलक्टा ग्रन्थि' के कारण पुत्री, पिता से प्रेम करती है।

3. किशोरावस्था में सामाजिक विकास :

किशोरावस्था मानवीय जीवन की अनीखी अवस्था है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास इस प्रकार है-

(A) आत्मप्रेम :

- स्वयं से ही प्रेम करना।
- विषमलिंगी आकर्षण के कारण, आकर्षक बनना।

(B) सामाजिक चेतना का उदय :

- समूह भावना, आस्था व त्याग का व्यापक रूप सामाजिक चेतना के रूप में मिलना।
- स्वयं का दायरा छोड़कर मानवीय दायरे में प्रवेश।
- देश पर प्राण न्यीछावर करने की भावना का उदय।

(C) सामाजिक पहचान :

- सामाजिक पहचान स्थापित करने हेतु किशोर का क्रियाशील होना।
- व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने हेतु तत्पर रहना।

संवेगात्मक विकास

संवेगात्मक विकास मानव जीवन के विकास व उन्नति के लिये अपना विशेष महत्व रखते हैं। यह मानव जीवन को सम्पूर्ण रूप से प्रभावित करता है। संवेगात्मक विकास सही नहीं होने पर व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। जब व्यक्ति अपने संवेगों का सही प्रकाशन करना सीख लेता है, तो उसे संवेगात्मक विकास कहा जाता है।

1. **शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास :** इस अवस्था के संवेगों का विकास अस्पष्ट होता है क्योंकि शिशु संवेग मन्द गति से आदत से जुड़ते हैं। शारीरिक आयु के साथ-साथ संवेगात्मक विकास में तीव्रता आती है।

संवेगात्मक विकास इस प्रकार है-

संवेगात्मक विकास, शैशवावस्था में इस प्रकार है-

आयु	संवेग (प्रकार)
जन्म के समय	उत्तेजना
1 माह	पीड़ा-आनन्द
3 माह	क्रोध
4 माह	परेशानी
5 माह	भय
10 माह	प्रेम
15 माह	ईर्ष्या
24 माह	खुशी-प्रसन्नता

2. बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास :

- इस अवस्था में संवेगों में स्थायित्व आने लगता है।
- समाज के नियमों व संवेगों में समायोजन करना सीख जाता है।
- प्रत्येक क्रिया के प्रति प्रेम, ईर्ष्या, घृणा व प्रतिस्पर्धा की भावना प्रकट करना प्रारम्भ करता है।

3. किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास : किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास इस प्रकार है-

- संवेग परिपक्व अवस्था में होता है।
- चेतन व जागरूक होते हैं। वे समय-समय पर क्रोध, प्यार, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा एवं संवेगों का खुलकर प्रयोग करते हैं।
- संवेगों में अत्यधिक तीव्रता पायी जाती है।

चारित्रिक विकास (नैतिक विकास)

शैशवावस्था

- उचित-अनुचित का ज्ञान न होना ।
- सामान्य नियमों का ज्ञान होना ।
- अहम् के भाव की प्रबलता ।
- आज्ञापालन के भाव की प्रबलता ।
- नैतिकता का उदय ।
- कार्य के परिणाम के प्रति चेतनता ।

बाल्यावस्था में चारित्रिक विकास

मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यावस्था को 'अधिक सीखने' की अवस्था बताया है। यह अवस्था चारित्रिक विकास को स्थायित्व देने वाली अवस्था होती है।

स्ट्रैन्ज़ रथ : "छः, सात एवं आठ वर्ष के बच्चों में विवेक, न्याय, ईमानदारी और मूल्यों के प्रति निष्ठा की भावना का विकास होने लगता है।"

- 'हम' की भावना का विकास ।
- सही-गलत, न्याय-अन्याय में अन्तर करना सीखना
- आदर्श व्यक्तित्व का चुनाव।
- धार्मिक भावों का उदय ।

किशोरावस्था में चारित्रिक विकास

इस अवस्था तक चारित्रिक विकास की जड़ें मजबूत हो जाती हैं, वह आवश्यकतानुसार उनका चयन करता है-

- समायोजन का अभाव ।
- मानव धर्म का महत्व ।
- सभ्यता व संस्कृति का संरक्षण ।
- चारित्रिक गुणों का विकास ।

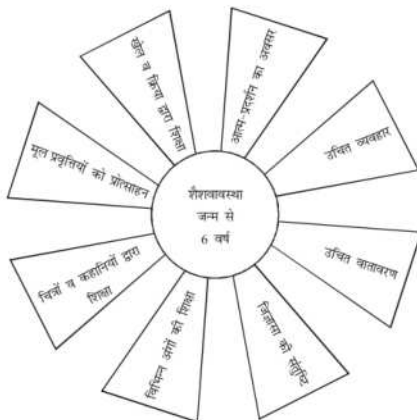
विकास की अवस्थाओं की मुख्य विशेषताएँ व शिक्षा का आयोजन

1.



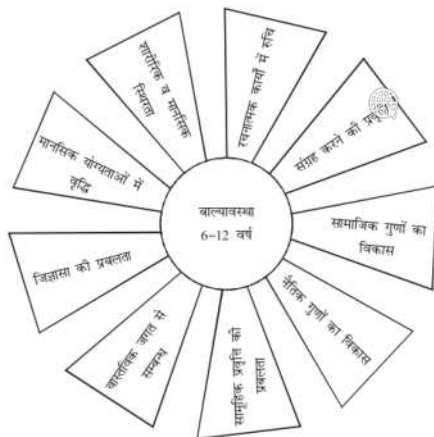
शिशुवावस्था की विशेषताएँ

2.



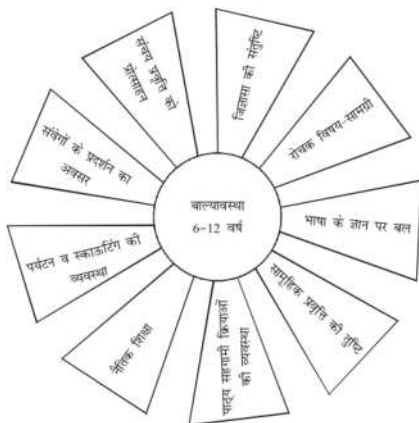
शिशुवावस्था में शिक्षा का स्वरूप

3.



बाल्यावस्था (जीवन का अनोखा काल) की विशेषताएँ

4.



बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप

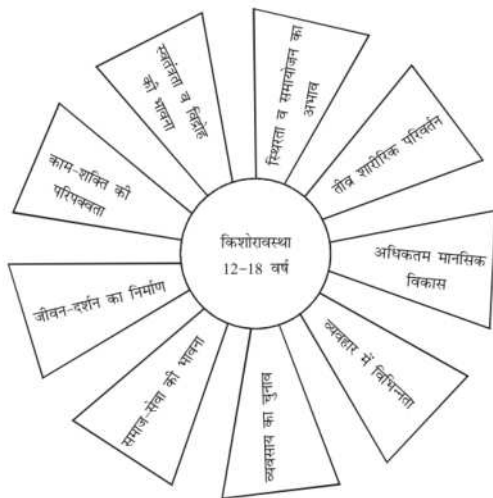
किशोरावस्था

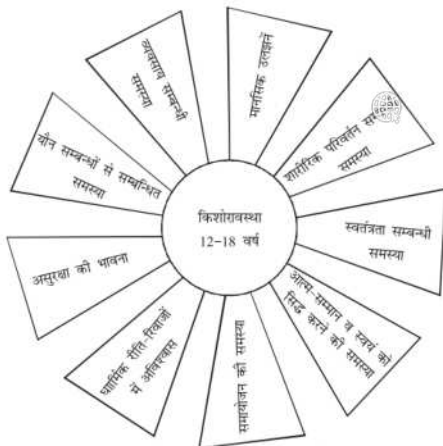
मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का स्थान महत्वपूर्ण है। इसे 'बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का सन्धिकाल (Transitional Period) कहते हैं। यह अवस्था 12 से 18 वर्ष के मध्य होती है। मानव जीवन की इस अवस्था को कठिन अवस्था माना जाता है। व्यक्ति के जीवन में एक साथ इतने परिवर्तन आते हैं कि वह असहज हो उठता है व उसे समायोजन में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

स्टेनले हाल के अनुसार, "किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है।"

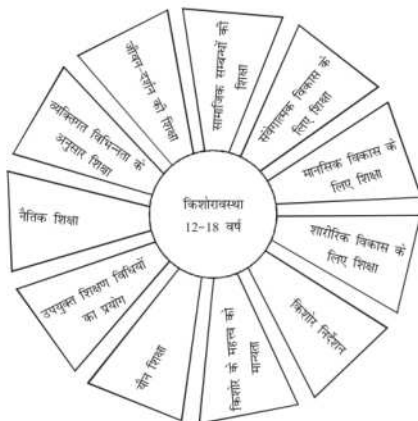
किशोरावस्था वह समय है जब किशोर अपने को व्यस्क समझता है, व व्यस्क उसे बालक समझते हैं, वह परिस्थितियों से समायोजन नहीं कर पाता। उसके संवेगों व आवेगों में परिवर्तनशीलता होती है। शारीरिक परिवर्तन इतनी तीव्रता से होता है जिसे वह समझ नहीं पाता, फलस्वरूप वह भयभीत, क्रोधी व चिढ़ा-चिढ़ा-सा हो जाता है। वह स्वतंत्रता चाहता है, परन्तु परिवार के बड़ों की आज्ञा उसे माननी पड़ती है।

किशोर को अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी सही निर्देशन न मिलने से वह गलत रास्ते पर पड़ जाता है। अतः माता-पिता व अध्यापक को इस अवस्था की विशेषताओं, समस्याओं व शिक्षा के स्वरूप को समझना चाहिए।





किशोरावस्था सम्बन्धी समस्याएँ



किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप

- इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न अवस्थाओं की अलग-अलग विशेषताएँ व समस्याएँ होती हैं। हमारी शिक्षा का स्वरूप भी उन्हीं के अनुरूप होना चाहिए, तभी शिक्षण व शिक्षा सार्थक होती है।

जीन पियाजे, वाइगोट्स्की व लारेंस कोहलबर्ग

मानव वृद्धि व विकास के विभिन्न आयाम हैं। पियाजे, कोहलबर्ग, वाइगोट्स्की इन्हीं आयामों से जुड़े सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। जीन पियाजे तथा वाइगोट्स्की संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में अपने सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, जबकि लारेंस कोहलबर्ग नैतिक विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं।

जीन पियाजे का सिद्धान्त

जीन पियाजे एक प्रमुख स्विस मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने अलफ्रेड बिनो के साथ वृद्धि-परीक्षणों पर कार्य किया। उन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर कार्य किया। तत्पश्चात् संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

पियाजे अपने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त में कहते हैं कि बालकों में वास्तविकता के स्वरूप के बारे में चिन्तन करने तथा उसे खोज करने की शक्ति न तो बालकों के परिपक्वता स्तर पर और न ही सिर्फ उसके अनुभवों पर निर्भर करती है, बल्कि इन दोनों की अन्तःक्रिया द्वारा निर्धारित होती है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण संप्रत्यय इस प्रकार हैं-

1. **अनुकूलन (Adaptation) :** पियाजे के अनुसार, बालकों में वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने को जन्मजात प्रवृत्ति को अनुकूलन कहते हैं। अनुकूलन की दो उपक्रियाएँ हैं-
 - (A) **आत्म-सात्करण (Assimilation) :**
 - (B) **समायोजन (Accommodation) :**

(A) **आत्म-सात्करण :** आत्म-सात्करण से अभिप्राय यह है कि जब बालक अपनी समस्या का समाधान करने के लिए या वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने हेतु पूर्व में सीखी गई क्रियाओं का सहारा लेता है।

(B) **समायोजन :** समायोजन में पूर्व में सीखी क्रिया काम नहीं आती, बल्कि बालक अपनी योजना या व्यवहार में परिवर्तन लाकर नए वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है।
2. **साम्यधारण :** यह प्रत्यय अनुकूलन से मिलता है। साम्यधारण में बालक आत्म-सात्करण व समायोजन के बीच संतुलन स्थापित करता है। साम्यधारण प्रत्यय में बालक आत्म-सात्करण व समायोजन, दोनों का प्रयोग करता है।
3. **संरक्षण :** संरक्षण से अभिप्राय वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को पहचानने व समझने की क्षमता से है। किसी वस्तु के रूप-रंग में परिवर्तन को उस वस्तु के तत्व में परिवर्तन से अलग करने की क्षमता से है।
4. **संज्ञानात्मक संरचना :** किसी भी बालक का मानसिक संगठन या मानसिक क्षमताओं के सेट को संज्ञानात्मक संरचना कहते हैं।
5. **मानसिक सक्रियता :** बालक द्वारा किसी समस्या के समाधान पर चिन्तन करना मानसिक सक्रियता करना माना जाता है।
6. **स्कीम :** व्यवहारों के संगठित पैटर्न को, जिसे आसानी से दोहराया जा सके, जैसे-कार चलाने के लिए कार स्टार्ट करना, गैयर डालना, स्पीड देना सभी उपक्रियाओं को मिलाकर एक कार्य हुआ। यह संगठित पैटर्न ही स्कीम कहा जाता है।
7. **स्कीमा :** स्कीमा से तात्पर्य ऐसी मानसिक संरचना से है जिसका सामान्यीकरण (generalization) किया जा सके।
8. **विकेन्द्रीकरण :** किसी भी वस्तु या चीज के बारे में वस्तुनिष्ठ या वास्तविक ढंग से सोचने की क्षमता विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। प्रारम्भ में बालक ऐसा नहीं सोचता, परन्तु 2 साल का होते-होते वह वस्तु के बारे में वास्तविक ढंग से सोचने लगता है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास को चार मुख्य अवस्थाओं में बांटा है:

1. इन्द्रियजनित गामक अवस्था (Sensory-motor stage) 0-2 साल
2. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage) 2-7 साल
3. मूर्त-संक्रियात्मक अवस्था (Concrete operational stage) 7-11 साल
4. अमूर्त-संक्रियात्मक अवस्था (Formal operational stage) 11-15 साल

1. इन्द्रियजनित गामक अवस्था : यह अवस्था जन्म से दो वर्ष की अवधि में पूरी होती है। इस अवस्था में वह अपनी मानसिक क्रियाओं को अपनी इन्द्रियजनित गामक क्रियाओं के रूप में प्रकट करता है। शारीरिक रूप से चीजों को इधर-उधर करना, किसी चीज को पकड़ना, अपने भावों को रोकर व्यक्त करना, जो चाहिए, उसे दिखाकर अपनी बात कहना इसके प्रमुख लक्षण हैं। जो भी कुछ कहना या समझना होता है, उसकी अभिव्यक्ति गामक क्रियाओं के रूप में करता है। वस्तु का अस्तित्व तब तक होता है, जब तक वह उसके सामने रहती है, परन्तु दो वर्ष की समाप्ति होने तक वह उन वस्तुओं के प्रति भी अनुक्रिया करना प्रारम्भ कर देता है, जो सीधे दृष्टिगोचर नहीं होती। 3-4 महीने तक वस्तु उनके सामने से हटाने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु अब उसका चिन्तन अधिक वास्तविक हो जाता है। वस्तु सामने न होने पर भी उसका अस्तित्व बना रहता है, इसे ही 'वस्तु स्थायित्व' का गुण कहा जाता है।

2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था : संज्ञानात्मक विकास की यह अवस्था 2 से 7 साल की होती है। इसमें भाषा का विकास ठीक प्रकार से प्रारम्भ हो जाता है। अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा बन जाती है, गामक क्रियाएँ नहीं। संप्रत्यय निर्माण करने लगता है। वस्तुओं को पहचानना व विभेद करने लगता है, परन्तु 5 वर्ष तक उनका यह संप्रत्यय निर्माण अधूरा व दोषपूर्ण ही होता है। इस अवस्था के प्रारम्भ में नहीं, परन्तु समाप्त होते-होते वह सजीव-निजीव में भेद करने लगता है, कल्पना की अधिकता पायी जाती है। इस अवस्था के दो मुख्य दोष हैं-

(1) **जीववाद (Animism) :** जीववाद बालकों के चिन्तन में पाये जाने वाला एक दोष जिसमें वह निजीव को सजीव समझता है। जैसे-कार, पंखा, बादल सभी को वह सजीव समझता है।

(2) **आत्मकेन्द्रिता :** बालक के विचार में व्यक्तिनिष्ठता पायी जाती है। वह सिर्फ अपने विचार को ही सत्य मानता है। जैसे-वह यह मानता है कि जैसे ही वह तेज दौड़ता है, तो सूर्य भी तेजी से चलना प्रारम्भ कर देता है।

ये दोनों दोष 2-4 की अवधि में पाये जाते हैं। 4-7 वर्ष में बालकों का चिन्तन व तर्क पहले से अधिक परिपक्व हो जाता है, परन्तु इस चिन्तन में उल्लङ्घनीय गुण (Reversibility) नहीं होती।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था : यह अवस्था 7 से 11 वर्ष तक होती है। इसमें बालक ठोस वस्तुओं के आधार पर आसानी से मानसिक क्रियाएँ करके समस्या का समाधान करता है। वस्तुओं को पहचानना, विभेद करना, वर्गीकरण द्वारा समझना सीख जाता है, परन्तु उनका समस्या समाधान अमूर्त आधार पर नहीं होता, स्थूल या मूर्त ही होता है, वस्तुओं को देखकर ही समस्या को समझ पाते हैं, सुनकर नहीं। यही इस अवस्था का दोष है कि मानसिक संक्रियाएँ मूर्त या ठोस पर आधारित होती हैं, दूसरा दोष यह है कि चिन्तन पूर्णतः क्रमबद्ध नहीं होता।

4. अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था : यह अवस्था 11 से 15 वर्ष के बीच होती है। इसमें किशोरों का चिन्तन अधिक लचीला तथा प्रभावी हो जाता है। चिन्तन में क्रमबद्धता विद्यमान रहती है, किसी भी समस्या का समाधान काल्पनिक रूप में सोचकर व चिन्तन करके करते हैं। चिन्तन में वस्तुनिष्ठता व वास्तविकता पायी जाती है। अतः कहा जा सकता है कि बालकों में विकेन्द्रण पूर्णतः विकसित हो जाता है।

लेव वाइगोट्स्की सिद्धान्त

वाइगोट्स्की ने बालकों के संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक कारकों एवं भाषा को महत्वपूर्ण बताया है, इसलिए वाइगोट्स्की के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त भी कहा जाता है। वाइगोट्स्की के अनुसार बालक जिस उम्र में भी किसी संज्ञानात्मक कौशल को सीखते हैं, उन पर इस बात का प्रभाव पड़ता है कि क्या संस्कृति से उन्हें सही सूचना तथा निर्देश प्राप्त हो रहे हैं या नहीं। वाइगोट्स्की बताते हैं कि वास्तव में संज्ञानात्मक विकास एक अंतःव्यक्तिक-सामाजिक परिस्थिति (Interpersonal social context) में सम्पन्न होता है जिसमें बच्चों को अपने वास्तविक विकास के स्तर अर्थात् जहाँ तक वे बिना किसी भी मदद के स्वयं कार्य कर लें, से अलग और उनके संभाव्य विकास के स्तर अर्थात् जिसे वे सार्थक एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सहायता से प्राप्त करने में सक्षम हैं, के तरफ ले जाने की कोशिश की जाती है। इन दोनों स्तरों के बीच के अंतर को वाइगोट्स्की ने समीपस्थ विकास का क्षेत्र कहा है। समीपस्थ विकास का क्षेत्र से तात्पर्य बच्चों के लिए ऐसे कठिन कार्यों के क्षेत्र से होता है जिसे वह अकेले नहीं कर सकता, लेकिन अन्य तत्त्वों तथा वृत्तान्त सहयोगियों की मदद से उसे करना संभव है। वाइगोट्स्की ने विचार किया कि वयस्कों के साथ की गई सामाजिक अन्तःक्रिया किस प्रकार बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में मदद करती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों में चिन्तन व भाषा, दोनों ही स्वतंत्र रूप से पहले विकसित होते हैं, बाद में वे आपस में मिल जाते हैं। उनका मत था कि सभी मानसिक कार्य के बाह्य या सामाजिक उद्भव होते हैं। अपने चिन्तन पर ध्यान केंद्रित करने से पहले बच्चों का दूसरों के साथ बातचीत करने के लिए भाषा को सीखना अनिवार्य होता है।

लॉरेंस कोहलबर्ग का सिद्धान्त

कोहलबर्ग ने विभिन्न प्रयोगों के बाद यह बताया कि व्यक्ति में नैतिक विकास मुख्य तीन अवस्थाओं से होकर गुजरता है। प्रत्येक स्तर की दो-दो अवस्था होती है। यह भी बताया कि इन अवस्थाओं का क्रम निश्चित होता है, परन्तु सभी व्यक्तियों में समान उम्र में ये अवस्थाएँ नहीं होतीं, व्यक्ति किसी एक अवस्था को छोड़कर आगे नहीं बढ़ता। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो नैतिक निर्णय के उच्चतम स्तर पर कभी नहीं पहुँच पाते तथा कुछ लोग नैतिक निर्णय के अपरिपक्व स्तर पर हमेशा पुरस्कार व दण्ड से छुटकारा पाने तक ही सीमित रहते हैं। ये तीन स्तर इस प्रकार हैं-

1. पूर्व रूढ़िगत नैतिकता स्तर (Level of pre-conventional level):

यह अवस्था 4 से 10 साल की आयु तक होती है। सही या गलत का निर्णय स्वयं के मानकों के आधार पर न लेकर दूसरे लोगों के मानकों के आधार पर लेते हैं। बच्चे किसी भी बात को अच्छा या बुरा उसके भौतिक परिणामों के आधार पर कहते हैं।

इसमें दो अवस्था होती है। प्रथम अवस्था में बालक शक्तिशाली, प्रतिष्ठित व्यक्ति या माता-पिता के प्रति सम्मान दिखाता है ताकि उन्हें दण्ड न मिले। दूसरी अवस्था के बालकों में पुरस्कार पाने की अभिप्रेरणा प्रबल होती है। यह दिखावे की योजना होती है जिसमें बालक सहभागिता आदि दिखाता है। सही अर्थ में न्याय, उदारता, सहानुभूति पर आधारित नहीं होता।

2. रूढ़िगत नैतिकता का स्तर (Level of conventional morality):

यह अवस्था 10 से 13 साल की होती है। इसमें बालक उन सभी क्रियाओं को सही समझता है जिससे दूसरों को मदद मिले या जो समाज के नियमों के अनुकूल हो।

3. उत्तर रूढ़िगत नैतिकता का स्तर (Level of post-conventional morality):

इस अवस्था में बच्चों में नैतिक आचरण सम्पूर्ण रूप से आन्तरिक नियंत्रण में होता है, नैतिकता का सबसे उच्च स्तर यही है।

कोहलबर्ग ने स्पष्ट किया कि जैसे-जैसे बच्चे व किशोर परिपक्व होते जाते हैं या उनकी आयु बढ़ती है, वे पूर्व कथित क्रम में नैतिकता के स्तर पर बढ़ते चले जाते हैं। वे किसी भी चरण या कदम को छोड़कर आगे नहीं बढ़ते।